श्रमण-जीवन के परीषह

श्री जौहरीमल छाजेड़

श्रमण द्वारा प्रत्येक कार्य मुक्ति के लक्ष्य से किया जाता है। अतः श्रमण अपने जीवन में आने वाले कष्टों को या परीषहों को मुक्ति का हेतु समझकर विनय भाव से उन्हें स्वीकार करता है और समता भाव से सहन करता है। ये परीषह बाईस प्रकार के कहे गए हैं, जिन्हें लेखक ने उत्तराध्ययन सूत्र से संयोजित कर, उस पर जय प्राप्त करने वालों के दृष्टान्त भी साथ में योजित किये हैं। **-सम्पादक**

विनय की सम्यक् शिक्षा प्रदान करने के पश्चात् गुरुदेव श्री सुधर्मा स्वामी ने अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी को कहा कि श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने उत्तराध्ययन सूत्र के अन्तर्गत दूसरे अध्ययन 'परीषह-प्रविभक्ति' में 'परीषह-विजय'' का उपदेश दिया है।

विनयाचरण से व्यक्ति धीर एवं साहसी बनता है और श्रमण एवं श्रमणी-जीवन में आने वाले परीषहों, कष्टों, अन्तर-बाह्य संघर्षों में विजयी होकर जीवन-संग्राम में सफल विजेता बनता है।

परीषह का अर्थः-धर्म पालन करते समय श्रमण-जीवन में आने वाले कष्टों को परीषह कहा है तथा धर्म पथ से विचलित हुए बिना कर्मों की निर्जरा हेतु धर्मबुद्धि से उन्हें समभावपूर्वक सहन करना परीषह-जय है।

श्री सुधर्मा स्वामी ने शिष्य जम्बू स्वामी को ऐसे बाईस परीषह बतलाए हैं -

(1) क्षुधा परीषहः-

(i) शरीर भूख से अत्यन्त पीड़ित होने पर भी संयम बल वाला तपस्वी साधु फलादि का स्वयं छेदन नहीं करे, दूसरों से छेदन नहीं करावे, अन्न आदि स्वयं न पकावे तथा दूसरों से भी नहीं पकवाये। श्रमण के लिए ग्रहणैषणा से सम्बद्ध नियमों का पालन करता हुआ ही आहार ग्रहण करे।

(ii) लम्बे समय से भूखा रहने के कारण शरीर कौए की जाँघ या काकजंघा सम तृण के समान अत्यन्त दुर्बल हो जाए, तो भी आहार-पानी की मर्यादा को जानने वाला साधु, मन में दीनता के भाव न लाता हुआ, दृढ़ता के साथ संयममार्ग पर विचरण करे।

कथाः- उज्जयिनी निवासी हस्तिमित्र के विरक्त एवं प्रव्रजित पुत्र हस्तिभूति की कथा द्रष्टव्य है।

(2) पिपासा परीषहः-

(i) पिपासा (तृषा) से पीड़ित होने पर असंयम में अरुचि रखने वाला लज्जाशील एवं संयमी मुनि सचित्त जल का सेवन न करे, किन्तु अचित्त प्रासुक जल की एषणा करे।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(ii) जहाँ लोगों का आना-जाना नहीं है ऐसे निर्जन मार्ग में जाता हुआ साधु प्यास से अतिव्याकुल हो जाय तथा मुँह सूख जाए फिर भी वह दीनता रहित होकर उस प्यास के परीषह को सहन करे, किन्तु साधु मर्यादा का उल्लंघन करके सचित्त पानी का सेवन नहीं करे।

कथा:- इस विषय में अम्बड़ के शिष्यों द्वारा पिपासा परीषह सहन करने की कथा द्रष्टव्य है।

(3) शीत परीषह:-

(i) पापों से विरत एवं स्निग्ध भोजनादि के अभाव में रुक्ष शरीर वाले मुनि को विचरण करते हुए कदाचित् शीत पीड़ित करे, तो जिनागम को सुन-समझ कर स्वाध्याय आदि के काल का उल्लंघन करके दूसरे स्थान में न जाए, मर्यादा का उल्लंघन नहीं करे।

(ii) सर्दी से पीड़ित होने पर मुनि इस प्रकार नहीं सोचे कि मेरे पास शीत-निवारण के योग्य मकान आदि नहीं है तथा शरीर को ठण्ड से बचाने के लिए छवित्राण-कम्बल आदि ऊनी वस्त्र नहीं हैं तो मैं अग्नि का सेवन क्यों न कर लूँ।

कथा:- राजगृह नगर के भद्रबाहु स्वामी के पास दीक्षित और एकल विहारी प्रतिमाधारी चार समवयस्क मुनियों की कथा द्रष्टव्य है।

(4) उष्ण परीषह:-

(i) तपी हुई धरती, शिला, बालू आदि की गर्मी से, परिताप से तथा बाहर से पसीना, मैल या लुहारशाला के पास खड़े हों तो उसकी अग्नि से और अन्दर से प्यास से उत्पन्न हुई दाह से अथवा ग्रीष्मकालीन सूर्य-किरणों के प्रखर ताप से पीड़ित साधु ठण्डक आदि की सुख-साता के लिये व्याकुलता न करे।

(ii) गर्मी के ताप से तप्त होने पर मर्यादाशील साधु त्रिविध प्रतिकार न करे- (1) स्नान की इच्छा न करे, (2) शरीर पर पानी न डाले और (3) पंखे आदि से हवा न करे।

कथा:- इस विषय में अर्हन्नक मुनि की कथा द्रष्टव्य है।

(5) दंशमशक परीषह:-

(i) जैसे युद्ध के मोर्चे में रहकर शूरवीर बाणों की कुछ भी परवाह नहीं करता हुआ शत्रु-सैन्य का हनन करता है, वैसे ही महामुनि भी डाँस, मच्छर तथा उपलक्षण से जूँ, खटमल आदि क्षुद्र जन्तुओं के उपद्रवों की कुछ भी परवाह न करते हुए रागद्वेष रूपी अन्तरंग शत्रुओं को जीतकर समभाव में स्थित रहे।

(ii) मुनि डाँस और मच्छरों से संत्रस्त (उद्विग्न) न हो, न उन्हें हटाए, मन से भी उनके प्रति द्वेषभाव न लाए, अपना माँस और रक्त खाने-पीने पर भी उन प्राणियों के प्रति उपेक्षा भाव रखे, उन्हें मारे नहीं।

कथा:- इस विषय में एकल विहारी सुमनोभद्र (सुदर्शन) मुनि की कथा द्रष्टव्य है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(6) अचेल परीषहः-

(i) मेरे वस्त्र अब अत्यन्त जीर्ण हो गये हैं, इनके सिवाय अन्य वस्त्र मेरे पास नहीं हैं। ये वस्त्र तो थोड़े दिन ही चलेंगे। कोई दाता भी नहीं दिखता, ऐसी स्थिति में मुझे निर्वस्त्र होना पड़ेगा। भिक्षु इस प्रकार का दैन्य भाव मन में न लाये और न यह सोचकर मन में हर्षित हो कि "मेरे जीर्ण वस्त्र देखकर कोई श्रद्धालु श्रावक मुझे नये वस्त्र दे देगा। अहा! फिर मैं नये वस्त्रों से सुसज्जित हो जाऊँगा।" इस प्रकार हर्ष भी न करे, अपितु दैन्य व हर्ष से दूर रहे।

(ii) विभिन्न एवं विशिष्ट परिस्थितियों के कारण कभी मुनि अचेलक होता है और कभी सचेलक भी होता है। अतः ये अचेलक अवस्था और सचेलक अवस्था, दोनों ही स्थितियाँ, यथाप्रसंग संयमधर्म के लिए हितकारक जानकर ज्ञानी मुनि खेद न करे।

कथाः- आर्यरक्षित आचार्य के संसारपक्षीय पिता प्रव्रजित सोमदेव मुनि की कथा द्रष्टव्य है।

(7) अरति परीषहः-

(i) एक गाँव से दूसरे गाँव विचरण करते हुए अकिंचन (परिग्रह रहित) अणगार के चित्त में कदाचित् अरति (संयम के प्रति अरुचि) प्रविष्ट हो जाए तो उस परीषह को समभाव से सहन करे।

(ii) प्रस्तुत परीषह को सहन करने के लिए सप्तसूत्री उपाय बताया गया है- (1) हिंसादि से या विषयासक्ति से विरत हो। (2) आत्म-भाव का रक्षक रहो। (3) श्रुतचारित्र धर्मरूपी उद्यान में रमण करे (4) आरम्भप्रवृत्ति से दूर रहे, (5) शान्त रहे, (6) हिताहित या वस्तु तत्त्व का मनन करता रहे एवं (7) सर्व विरति प्रतिज्ञाधारक मुनि अरति आते ही उसकी उपेक्षा करके संयममार्ग पर मन को मोड़ दे।

कथाः- इस विषय में प्रव्रजित पुरोहित पुत्र और राजपुत्र की कथा द्रष्टव्य है।

(8) स्त्री परीषहः-

(i) लोक में जो स्त्रियाँ हैं वे मनुष्यों के लिये आसक्ति का कारण हैं। इन स्त्रियों को जिस साधु ने ज्ञ-परिज्ञा से त्याज्य समझकर, प्रत्याख्यान-परिज्ञा से छोड़ दिया है उस साधु का साधुत्व सफल है।

(ii) इस प्रकार स्त्रियों के संग को कीचड़ रूप मानकर बुद्धिमान साधु उनमें फंसे नहीं तथा आत्मगवेषक होकर संयम मार्ग में ही विचरे।

कथाः- इस विषय में स्थूलभद्र स्वामी और उनके सिंहगुफावासी गुरुभ्राता की कथा द्रष्टव्य है।

(9) चर्या परीषहः-

(i) निर्दोष आहार से निर्वाह करने वाला साधु अकेला ही परीषहों को पराजित कर ग्राम में, नगर में, निगम (व्यापारिक केन्द्र-मंडी) में अथवा राजधानी में विचरण करे।

(ii) भिक्षु गृहस्थादि से असाधारण होकर विचरण करे। वह वस्तुओं (सजीव-निर्जीव) के प्रति ममत्व भाव न करे, गृहस्थों के संसर्ग से दूर रहे और गृह-बन्धन से रहित, अथवा अनियतवासी होकर

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

परिभ्रमण करे।

कथाः- इस विषय में संगम नामक स्थविर आचार्य की कथा द्रष्टव्य है।

(10) निषद्या परीषहः-

(i) श्मशान में, सूने घर में अथवा वृक्ष के नीचे द्रव्य से अकेला और भाव से राग-द्वेष रहित केवल आत्म-भाव में लीन, अचपल होकर बैठे या कायोत्सर्ग करे, किन्तु आस-पास के किसी दूसरे प्राणी को भयभीत न करे, या कष्ट न दे।

कथाः- इस विषय में एकल विहारी प्रतिमाधारी कुरुदत्त मुनि की कथा द्रष्टव्य है।

(11) शय्या परीषहः-

(i) उन श्मशानादि पूर्वोक्त स्थानों में कायोत्सर्गादि में बैठे हुए साधु को कदाचित् देवता, मनुष्य या तिर्यञ्च संबंधी कोई उपसर्ग आ जाये तो उन्हें समभाव पूर्वक सहन करे, किन्तु अनिष्ट की शंका से भयभीत होकर वहाँ से उठकर अन्य आसन पर न जाए।

(ii) स्त्री, पशु, नपुसंक आदि के संसर्ग से रहित विविक्त उपाश्रय पाकर, भले ही वह अच्छा हो या बुरा, उसमें मुनि समभाव पूर्वक यह सोच कर रहे कि एक रात में यह क्या सुख-दुःख उत्पन्न करेगा? तथा वहाँ जो भी अनुकूल-प्रतिकूल परीषह आए, उसे समभाव से सहन करे।

(iii) ऊँची-नीची या अच्छी-बुरी शय्या पाकर तपस्वी एवं सर्दी-गर्मी आदि सहन करने में समर्थ भिक्षु मर्यादा का अतिक्रमण करके संयम का घात न करे। पापदृष्टि वाला साधु ही हर्ष-शोक से अभिभूत होकर मर्यादा को तोड़ता है।

कथाः- शय्या परीषह पर सोमदत्त और सोमदेव मुनि की कथा द्रष्टव्य है।

(12) आक्रोश परीषहः-

(i) यदि कोई मनुष्य साधु का दुर्वचनों से तिरस्कार करता है, उसे गाली देता है तो वह उस पर रोष न करे, क्योंकि रोष करने वाला साधु बालकों-अज्ञानियों के समान हो जाता है। अतः साधु कोप न करे।

(ii) कर्ण आदि इन्द्रियों को काँटे की तरह चुभने वाली और स्नेहरहित कठोर भाषा को सुनकर भिक्षु मौन रहे, उसके प्रति उपेक्षा भाव रखे, न ही मन में उस बात को लावे।

कथाः- आक्रोश परीषह पर राजगृहवासी अर्जुन मुनि की कथा द्रष्टव्य है।

(13) वध परीषहः-

(i) यदि कोई दुष्ट अनार्य पुरुष साधु को मारे तो साधु उस पर क्रोध न करे, मन में भी उस पर द्वेष न लाये। 'क्षमा उत्कृष्ट धर्म है' ऐसा जानकर साधु क्षमा, मार्दव आदि दशविध यति-धर्म का विचार करके पालन करे।

(ii) पाँच इन्द्रियों का दमन करने वाले संयमी साधु को कोई भी व्यक्ति कहीं पर मारे-पीटे तो "जीव

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(आत्मा) का कभी नाश नहीं होता'' इस प्रकार साधु विचार करे।

कथाः- इस विषय में स्कन्दाचार्य के 499 शिष्यों की कथा जान लेनी चाहिए।

(14) याचना परीषहः-

(i) साधु को याचना-परीषह-विजय के लिए ऐसा चिन्तन करना चाहिए कि अहो! अनगार भिक्षु की यह चर्या वास्तव में सदा से ही अत्यन्त कठिन रही है। उसे आहार, वस्त्र आदि सब कुछ याचना से ही प्राप्त होता है, उसके पास ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो बिना माँगे प्राप्त हुई हो।

(ii) गोचरी हेतु गृहस्थ के यहाँ प्रविष्ट साधु के लिए गृहस्थ के सामने आहार आदि के लिए हाथ पसारना आसान नहीं है। अतः याचना के मानसिक कष्ट से घबराकर साधु ऐसा विचार न करे कि इससे तो गृहवास ही अच्छा है।

(iii) भोजन तैयार होने जाने पर साधु गृहस्थों के यहाँ आहार की गवेषणा करे। आहार मिले अथवा नहीं मिले तो भी बुद्धिमान साधु खेद न करे।

कथाः- याचना-परीषह पर बलदेव मुनि की कथा द्रष्टव्य है।

(15) अलाभ परीषहः-

(i) आज ही तो मैंने कुछ आहार नहीं पाया, संभव है, कल प्राप्त हो जाए। जो साधु इस प्रकार दीनता रहित होकर अलाभ का अपेक्षा से विचार करता है, उसे अलाभ परीषह व्यथित नहीं करता है।

कथाः- अलाभ परीषह-विजय पर ढंढण मुनि की कथा द्रष्टव्य है।

(16) रोग परीषहः-

(i) ज्वरादि रोग को कर्मों के उदय से उत्पन्न हुआ जानकर उसकी वेदना से पीड़ित साधु दीनता रहित होकर अपनी प्रज्ञा को स्थिर करे। रोग के व्याप्त होने पर तत्त्व बुद्धि में स्थिर होकर उसे समभाव से सहन करे।

(ii) रोग होने पर आत्म-गवेषक मुनि रोग प्रतीकारक चिकित्सा का अनुमोदन न करे, किन्तु समाधिपूर्वक रहे। निश्चय से उसका शुद्ध श्रमणभाव यही है कि वह रोगोत्पत्ति होने पर न तो स्वयं चिकित्सा करे, न ही करावे, उपलक्षण से उसका अनुमोदन भी न करे।

भावार्थः- यह कथन जिनकल्पी तथा अभिग्रहधारी साधु की अपेक्षा से है। स्थविर कल्पी के लिए सावद्य चिकित्सा का निषेध है, निरवद्य चिकित्सा का नहीं।

कथाः- मथुरानरेश के पुत्र रोगपरीषह-विजयी कालवैशिक कुमार श्रमण की कथा द्रष्टव्य है।

(17) तृणस्पर्श परीषहः-

(i) अचेलक एवं तेल आदि न लगाने से रुक्ष शरीर वाले सतरह प्रकार के संयम-पालक मुनि को घास, दर्भ आदि के संस्तारक (बिछौने) पर सोने या बैठने से शरीर को अत्यन्त पीड़ा होती है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

यही तृण-स्पर्श-परीषह है।

(ii) ग्रीष्मकाल में तेज धूप के गिरने से अतुल (असह्य) वेदना होती है, ऐसा जानकर घास या दर्भ से पीड़ित मुनि तन्तुओं (सूत के रेशों) से निष्पन्न वस्त्र का सेवन नहीं करते।

कथाः- तृण स्पर्श परीषह-विजय पर भद्रर्षि मुनि की कथा द्रष्टव्य है।

(18) जल्ल परीषह (मल परीषह):-

(i) पसीने के कारण जमे हुए मैल से या रज से अथवा ग्रीष्म ऋतु के परिताप से शरीर के पसीने से तरबतर हो जाने पर मेधावी मुनि सुखसाता के लिए विलाप न करे।

(ii) निर्जरार्थी मुनि पूर्वोक्त मलजनित कष्ट को सहन करे। इस आर्य एवं अनुत्तर धर्म को पाकर भाव मुनि जब तक शरीर न छूटे तब तक शरीर पर सहज रूप से जमे हुए इस प्रकार के मैल को सहर्ष धारण करे।

कथाः- मल परीषह न सहने के परिणाम के विषय में सुनन्द श्रावक की कथा द्रष्टव्य है।

(19) सत्कार-पुरस्कार परीषहः-

(i) राजा आदि (शासकवर्गीय या धनाढ्य, राजनेता आदि) अन्य तीर्थिक साधुओं का अभिनन्दन करते हैं, उनके सत्कार में खड़े होते हैं तथा उन्हें भिक्षा आदि के लिए निमंत्रण देते हैं और अन्य तीर्थिक इसे स्वीकार करते हैं, उन्हें देखकर आत्मार्थी मुनि वैसे अभिनन्दन-सत्कार की चाहना न करे।

(ii) जो मन्दकषायी, अल्प इच्छावाला, अज्ञात कुलों से भिक्षा लेने वाला तथा अलोलुप है, वह प्रज्ञावान साधु दूसरों को सरस आहार मिलते देख स्वादु-रसों में गृद्ध-आसक्त न हो एवं दूसरों को सम्मान पाते देख कर मन में पश्चात्ताप न करे।

कथाः- इस विषय में मुनि और उनके अन्धभक्त श्रावक की कथा द्रष्टव्य है। एक ने इस परीषह को जीता है, जबकि दूसरा इससे पराजित हुआ है।

(20) प्रज्ञा परीषहः-

(i) अहो! निश्चय ही मैंने पूर्व जन्म में अज्ञानरूप फल देने वाले ज्ञानावरणीय कर्म का बंध किया है, जिस कारण किसी के द्वारा किसी विषय में पूछे जाने पर मैं कुछ भी उत्तर नहीं देना जानता।

(ii) अज्ञान रूप फल देने वाले पूर्वकृत कर्म अबाधाकाल व्यतीत होने पर (परिपाक होने पर) उदय में आते हैं। इस प्रकार कर्म के विपाक को जानकर मुनि अपनी आत्मा को आश्वासन दे।

कथाः- प्रज्ञा परीषह पर भद्रमति मुनि एवं सागरचन्द्राचार्य की कथा द्रष्टव्य है। (दोनों कथाएँ मूलसूत्र के परिशिष्ट में देखें।)

(21) अज्ञान परीषहः-

(i) मैं निष्प्रयोजन ही मैथुन से निवृत्त हुआ तथा व्यर्थ ही मैंने इन्द्रिय और मन का संवरण किया,

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

क्योंकि धर्म कल्याणकारी है अथवा पापकारी, इसे भी मैं साक्षात् (प्रत्यक्ष रूप से) नहीं जानता।

(ii) तप और उपधान (ज्ञानाराधन के व्रत) को स्वीकार करने पर तथा विशिष्ट प्रतिमाओं का पालन करने पर इस प्रकार विशिष्ट चर्या से विहरण करने पर भी मेरा ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का आवरण दूर नहीं होता।

अपने तप, उपधान तप, प्रतिमा धारण तथा विशिष्ट साधना की फल विषयक आकांक्षा के विषय में साधु आतुरता-पूर्वक गलत चिन्तन करने लग जाता है। वह ऐसे सोचने लगता है कि यदि विरति से कोई अर्थ सिद्ध होता तो मेरा अज्ञान सर्वथा मिट जाता।

इस प्रकार भ्रान्त चिन्तन ही अज्ञान-परीषह है। इस प्रकार के गलत चिन्तन से मुक्त होना ही अज्ञान परीषह-विजय है।

कथाः- अज्ञान-परीषह के विषय में आभीर साधु की कथा जान लेनी चाहिए।

(22) दर्शन परीषहः-

(i) निश्चय ही परलोक नहीं है अथवा तपस्वियों की तपोलब्धि भी नहीं है अथवा मैं धर्म के नाम पर ठगा गया हूँ। इस प्रकार साधु विचार न करे।

(ii) पूर्वकाल में जिन हुए थे, वर्तमान में जिन हैं अथवा भविष्य में भी होंगे, ऐसा जो कहते हैं वे मिथ्या बोलते हैं, साधु इस प्रकार चिन्तन न करे।

दर्शन परीषह होता है तब व्यक्ति की दृष्टि, रुचि, श्रद्धा विपरीत हो जाती है। वह परलोक, पुनर्जन्म, आत्मा, धर्म, पुण्य, पाप, स्वर्ग-नरक, तप-जप, ध्यान आदि को नहीं मानता। तत्त्वों में उसकी अतत्त्व बुद्धि हो जाती है। वही दर्शन परीषह है। इस परीषह पर विजय पाने के लिए मिथ्यादृष्टि से तुरन्त हटकर सम्यग्दर्शन में अपने मन को स्थिर करना चाहिए।

कथाः- दर्शन परीषह पर आर्य आषाढ़ सूरि की कथा जान लेनी चाहिए।

उपसंहार :- परीषहों के साथ संग्राम में साधु हार न माने।

शास्त्रकार ने कहा है कि भगवान महावीर स्वामी ने स्वयं अनुभव करके 22 परीषहों का भली-भाँति निरूपण किया है कि निर्ग्रन्थ साधुओं को कहीं भी, किसी भी चर्या में प्रवृत्त होते समय इनमें से कोई भी परीषह उपस्थित हो जाए तो घबराना नहीं चाहिए, न ही अपनी साधु-मर्यादा भंग करके पतन मार्ग को अपनाना चाहिए, अपितु उनके सामने डटे रहकर, समभाव से उन्हें सहन करना चाहिए तथा उन्हें पराजित करके स्वयं परीषह-विजयी बनना चाहिए।

-स्वाध्यायी, जैन धर्म भूषण, पटेल चौक, भिस्तियों का बास, जोधपुर-342001(राज.)

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org